भारत की हर भाषा में जल ज्ञान

(राजस्थान के सन्दर्भ में विशेष)

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'*

वैज्ञानिकों ने जल को H_2o नाम दे दिया दिया तो उन्हें लगा कि जल पर हमें छोड़ किसी ने नहीं लिखा है। हमारे भारतीय भी पूरी 19वीं शती में यही सिद्ध करने में लगे रहे है कि संस्कृत में धार्मिक और काव्य-साहित्य छोड़कर कुछ है ही नहीं। सच्चाई यह है कि भारत की सभी भाषाओं में जल-विमर्श हुआ है। संस्कृत की व्यापकता के कारण तो सर्वाधिक विमर्श संस्कृत भाषा में है। लेखक ने अपने लेख में जल-विषयक ग्रन्थों की प्राचीन भण्डारों में खोजबीन और उपलब्धता की बात कही है। यह प्रसन्नता का विषय है कि जिन ग्रन्थों की इसमें सूचनाएँ और संकेत हैं, वे सभी लेखक ने स्वयं ही सम्पादित और अनूदित किए हैं। इस सदी में जलशास्त्र पर उनका अपूर्व कार्य है।

जल बहुत सहज उपलब्ध है लेकिन यह जीवनोपयोगी द्रव्य के रूप में महिमामय रहा है। जीवन निर्माता और संहारकर्ता भी है। इस अर्थ में यह तत्त्व है जिसके स्रोत, संगठन, गुणों पर चर्चा करें तो वैदिक मन्त्र, ऋचा या श्लोक याद आते हैं, जो प्रारंभिक और परिभाषिक विमर्श में सहारा बनते हैं। जल की साहित्यिक यात्रा और उसके सिंहावलोकन का कार्य मैंने 1999 के आसपास शुरू किया और शीघ्र ही यह ज्ञात हो गया कि भारतीय वाङ्मय में जल के पूरे 100 पर्याय हैं, लेकिन विकल्प एक भी नहीं है। जल-दिवस के आरंभिक आयोजनों के दौरान जब मैंने भाषण, वार्ता, लेख आदि तैयार किया तो लगा कि देश की प्रत्येक प्राचीन भाषा में पानी के बारे में लिखा गया है। पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, तेलगु, कश्मीरी डोगरी, बंगला, ओडिया से लेकर राजस्थानी तक जल का गुणगान अनेक रूपों में हुआ है।

संस्कृत चूँकि भारत और उसके उप महाद्वीपीय देशों के बीच सम्पर्क भाषा रही, ऐसे में सबसे अधिक सन्दर्भ और ग्रन्थों के संस्कृत में ही मिलने की सम्भावना लगी। मैंने इसी उद्देश्य से कोलकाता, पूना, बड़ौदा, कराड़, मुंबई, उज्जैन, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, उदयपुर के ग्रन्थ-भण्डारों के द्वार खटखटाए। आश्चर्य हुआ कि पानी के अनेक पक्षों पर विद्वानों ने विचार किया है। राजस्थान में 'भड़ली-पुराण', 'मेघ-प्रबोध', 'मेघमाला', 'कादम्बिनी' आदि की रचना होने के मूल में मेघों से जीवन की याचना का सनातन भाव निहित है। गुजरात में डंक-भडली संवाद राजस्थान की मनोभूमि को ही लिए है, लेकिन यह घाघ-भड़ली कहावतों का संस्कृत रूप रहा। घाघ वचन हमें उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तक मिलते हैं और बंगला बिहार में खनार वचन तथा महाराष्ट्र में सहदेव भाड़ली के रूप में सामने आते हैं। मिथिला में डाक-वचन के रूप में समान चर्चा की गयी है। ये सबके सब पराशर के मत में मान्य थे, जिन्होंने कृषकों की सबसे पहले चिन्ता की और मेघशास्त्र को सर्व सामान्य के लिए प्रकाशित किया।

राजस्थान और हरियाणा की धरती से विश्वास होता है कि विनशन पर लुप्त हुई सरस्वती नदी के तटवर्ती उपासक धर्मियों ने सरस्वती के प्रवाह क्षेत्र की पहचान को नहीं मिटने दिया। सारस्वतों ने जल के इस अर्गल (कुंजिका) को उदकार्गल शास्त्र में निबद्ध किया जिसको मनु, शास्वत, बलदेव ने अपने-अपने तरीके से लिखा और

*लगभग 175 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर- 313001, राजस्थान, दूरभाष संपर्क : 099280-72766, मेल : skjugnu@gmail.com

लोकप्रिय किया और 587 ई. में वराहमिहिर, 1118 ई. में भोजराज, 1129 ई. में सोमेश्वर, 1296 ई. में शारंगधर और 1577 ई. में चक्रपाणि मिश्र ने 'दकार्गल' नाम से लिखा या स्मरण किया। 'बृहत्संहिता' की विवृत्ति हो या 'शारदा-तिलक' की टीका, उनमें इस विषय को विस्तार मिला। गुजरात के 'मुहूर्त-दीपक' के कर्ता महादेव बाड़व ने तो इस पर अलग से छंद रच दिए।

इस प्रकार मेघशास्त्र का विस्तार गर्ग और नारद के 'मयूरचित्रकम्' में हुआ। गर्ग के नाम से प्रसिद्ध 'गार्गी-संहिता', 'गुरुसंहिता' में संवत्सर फल से ज्यादा ऋतु, मौसम और मेघ वर्षण, स्वाति वर्षण, आषाढ़ी योग, सद्योवृष्टि लक्षण मिलते हैं। वराह को ये सब विषय इतने प्रिय थे कि अपनी दोनों संहिताओं में सम्मान दिया।

जल के गुण धर्म की चर्चा प्रमुखता से सुश्रुत ने की और अनेक स्रोतों से मिलनेवाले जल का पहला वैज्ञानिक विभाजन किया। इसीको पुन: चरक ने संगठित किया और आगे 'अष्टांग-संग्रह' तथा 'अष्टांग-हृदय' में विश्लेषित किया गया। इनमें गांग जल और करकजल की सुन्दर परिभाषाएँ भी हैं। यह सब इतना उपयोगी विषय है कि प्रत्येक भारतीय को याद हो। यह संस्कृत भाषा के महत्त्व को पुष्ट ही नहीं करता, उसको उपयोगी भी बनाता है।

दर्शन में पञ्चतत्त्वों पर विचार के क्रम में जल की तन्मात्राओं पर चिन्तन किया गया और 'प्रमाणमंजरी', 'पञ्चदशी' आदि में बहुत जटिलता से जल तत्त्व को समझाया गया। राजा भोज ने पहली बार जल को उन चार तत्त्वों में माना जिसका मशीन (यन्त्र) हेतु उपयोग किया जा सकता था। भोज ने 'समरांगण-सूत्रधार' में जल के सूक्ष्म संगठन और उसकी ऊर्जा क्षमता पर जो विचार दिया, वह संस्कृत में मेरे अवगाहन में विशेष हेतु बना और उस ग्रन्थ के अनुवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ। यन्त्राध्याय में नल, जल, सिंचाई, द्रोणी, विमान यन्त्र आदि पर आश्चर्यजनक तथ्य मिलते हैं।

जलालय और जल-स्थापत्य के ग्रन्थ

गुजरात में सोलंकी युग का उत्कर्ष काल भारत की आत्मिक कला में एक योधेय युग के रूप में भी जाना जाता है। मेरा मानना है कि अन्तर बाह्य व्यापार की वृद्धि, धर्म नीति और शिल्प में नवीन प्रवृत्तियों का संचार और लोकरुचि का आकर्षण - ये वे विशेषताएँ हैं जिन्होंने सोलंकी युग की स्मृतियों को आज तक पवित्र बनाए रखा है। सोलंकियों ने तलवार को अपनी तरह से थामा और मूठ अपने पास रखकर फलक की चलक छलकती रही मेवाड़, मालवा और कोंकण तक। बरसों बाद भी सिद्धराज, कुमारपाल के किस्से स्मृतियों के हिस्से बने हैं। सूत तक भूल बैठे कि यह युग पौराणिक नहीं था, 'स्कन्दपुराण' ने सोलंकी काल को सजाया, तो 'सरस्वती-पुराण' तो इस युग का दस्तावेज हो गया।

जल स्थापत्य इस काल की एक उत्तम विशेषता है। यह अकाल के सीने पर सोलंकी युग के छैनी हथौड़ी वाले दस्तखत है। कूप, कुईं, कूटो वाली वापियाँ और सरोवर के साथ द्रोणियाँ- सबमें कुछ अनोखापन मिलता है। सांची वगैरह में जो तोरण अस्थि निखात, स्तूपों पर बनाए जाते थे, उस परम्परा को सोलंकियों ने सजीव, जनोपयोगी वास्तु से संबद्ध की। देव, जल और जन स्थापत्य को तोरणदार किया। भारतीय कला में तोरण कीर्ति की कलंगी और यश की छाप छवि के रूप में जाने जाते है। सोलंकी काल ने इसे ऊँचाई दी।

'अपराजितपृच्छा', 'दीपार्णव', 'क्षीरार्णव'-जैसे ग्रन्थ इस काल के शिल्प प्रयोगों, भारतीय सिविल इंजीनियरिंग में प्रचलन में आए शब्दों को समेटे हुए हैं और इनकी परम्परा सैद्धान्तिक से अधिक प्रायोगिक रही। जब इन ग्रन्थों पर मैंने काम किया, तब रह रहकर हर प्रयोग को देखने की इच्छा रहती थी, सोशल मीडिया ने इसे सुगम कर दिया। ये ही वे ग्रन्थ हैं, जिनके धारक और नियामक विप्रों ने यज्ञोपवीत को बदन पर धारण किया, तो हाथ में वास्तु के लिए सूत्र को साधे रखा। वे सूत्रधार कहे गए...। (इन पंक्तियों के लेखक द्वारा संपादित : अपराजितपृच्छा की भूमिका)

सोलंकियों ने व्यापार के केंद्र, जन जुड़ाव के स्थलों और मार्गों समेत अपने विजित क्षेत्रों में देवालय और जलालय के निर्माण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। उनकी सेना के साथ शिल्पियों का बड़ा समूह होता। रक्तपात के साथ ही जन सन्तोष के

लिए जनोपयोगी निर्माण कार्य आरम्भ कर दिए जाते थे। आहत को राहत के इस सिलसिले ने सोलंकियों को संवेदनशील शासक सिद्ध किया।

चौहानों की चांद वापी : आभानेरी

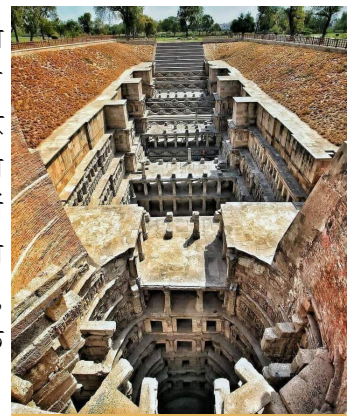

रानी की वाव : रानी उदयमती द्वारा निर्मित (1050ई.)

मरुधन्व प्रदेश में जलस्रोत के प्रति लगाव का ललित प्रादर्श है आभानेरी की वापिका। आठवीं सदी, चौहानों की सत्ता का अभ्युदय काल और उस धारणा का विकास, जिसमें प्रपा-पुण्य या वापी-माहात्म्य को प्रसारित किया जा रहा था। राजमार्ग पर वृक्ष-रोपण व विश्राम गृहों की अपेक्षा स्थायी महत्त्व के जल-स्रोतों को प्राथमिकता दी जाने लगी थी, विशेषकर गुजरात से मरुभूमि व कुरुभूमि होते हुए दोआब प्रदेश तक में वापियों, बावों, बावड़ियों या बावलियों की रचना हुई। हर वापी शिल्प परस्पर भिन्नता लिए रहा लेकिन जल सतह तक पहुँचने वाली सीढ़ियों के द्वार दिशा के आधार पर नन्दा, भद्रादि तिथियों पर वापी का नामकरण हुआ और इनके लिए शिल्पियों ने दिन-रात एक किया तो गणितज्ञों ने गणना करते-करते चैन न लिया। आय-गणित के रोचक प्रयोग रहे। चांद वापी विश्वभर में ऐसी निर्मिति मानी गई है जिसका न जोड़ है न तोड़। बिल्कुल बेजोड़। 64 फीट गहराई, 13 मंजिल और 3500 सीढ़ियों का विन्यास! कैसे किया गया इस गणित को? तब कौन-सा शास्त्र शिल्पीगणों का आधार और स्रोत रहा?

पद्मकुण्ड और उसका स्थापत्य विधान :

जलस्रोतों में 'कुण्ड' एक विशेष प्रकार की रचना है, तो उसमें भी एक निर्माण शैली है- पद्मकुण्ड की। इसे कमल कुण्ड भी कहा जाता है। इसे 'कमलखेत' के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि यह पद्म उत्पन्न करता है।

पुष्करिणी, दीर्घिका, पोखरी, पोखरणी वगैरह भी इसके पर्याय हैं। हालांकि 'अपराजितपृच्छा', 'राजवल्लभ' आदि शिल्प-ग्रन्थों में अनेक प्रकार के कुण्डों का नामवार विवरण मिल जाता है और पुराणों में 'मत्स्य' और 'साम्बपुराण' में इनका सुन्दर विवरण है। इससे यह तो लगता ही है -

1. ये कुण्ड कृत्रिम बनाए जाते थे,
2. कुण्डों की रचना पाषाणों से होती है,
3. पुष्पादि रूप में उनका संयोजन होता
4. कोणादि रूपों को भी दिखाया जाता।

भारतीय परम्परा में स्नान और देवालयों में स्नात आदि विधानों के लिए बड़े-बड़े कुण्ड उत्तर से लेकर दक्षिण तक बनाए गए हैं। कई नाम, कई रूप और उनके निर्माण की भी अपनी अपनी कहानियाँ और इतिहास है।

श्रीलंका तक कुण्डों का वैभव देखा जा सकता है। वहाँ राजधानी के पास ही पोलेण्णरुव्वा के जेतवनराम परिसर में एक सुंदर कुण्ड है : पद्मपोखरी (Lotus pond) यह करीब आठ सौ साल पुराना है। राजा पराक्रमबाहू (1153-86 ई.) के शासनकाल में इसका निर्माण हुआ। इसके प्रारम्भिक अवशेष जेतवन की खुदाई में मिले।

इसकी रचना पद्म के आकार की है और नज़र ऐसे आता है जैसे भूमिस्थ कमलाकार मंच हो, जबकि यह बहुत पवित्र जलस्रोत रहा है। 'महावंश' के उद्योग-निर्देश के मुताबिक इसका निर्माण हुआ। यह जानकर रोचक लगेगा यह पद्मकुण्ड अष्टकोण की रचना से बना हुआ है। भूमितल से नीचे तक पाँच प्रस्तर की तहें हैं और पुष्प के रूप में कुछ इस तरह गड़े हुए

पत्थरों का संयोजन किया गया है वे मुकुलित पंखड़ियों से लेकर आंतरिक रूप तक को दिखाई दे। इसकी रचना का नियम है: 360 ÷ 8 = 45°. इस तरह पाँचों स्तर के पाषाणों को 45-45 डिग्री में सुघड़ बनाकर ऊपर से नीचे तक न्यून करते हुए संयोजित किया गया है। इससे यह वृत्ताकार भी है और उसमें पंखुडी-पंखुड़ी पद्म प्रदर्शित करती है। दरअसल ये सीढ़ियाँ भी सिद्ध होती है। अंदर ही मोखी रूप में जलभरण और निकास रूप में जल निकालने का उपाय भी प्राचीन स्नानागार की तरह दिखाई देता है।

पद्मकुण्ड श्रीलंका में बना हुआ जलस्रोत

ओद् यन्त्र : जलीय इंजन

पानी उठाने, ले जाने जैसे कामों से जुड़े यन्त्र कब चलन में आए, मालूम नहीं, लेकिन वैदिक समन्दर्भों से आशा रखनेवालों ने जल की वैद्युतिक रचना का प्रमाण जरूर खोजा है :

संघातयति परमाण्वादीन् तद् ब्रह्मजलम्।

जड़ अर्थ में यहाँ कहा गया है कि अव्यक्त परमाणुओं का जो संयोग-वियोग करवाता है, वह जल कहा जाता है। जल के साथ यन्त्रों का साक्ष्य सिंचाई के प्रयोजन से अर्थशास्त्र में मिलता है। दूसरे अधिकरण में चार तरह के कृत्रिम साधनों का वर्णन है :-

1. हाथ द्वारा सिंचाई
2. कंधे पर लादकर ले जाए गए पानी से,
3. नलों व नालियों से और
4. नदी, कूप आदि स्रोतों से लाकर या उठाकर।

ओद् यन्त्र का अंकन, स्थान : गुजरात, सोलंकी

इनमें नलों द्वारा सिंचाई के लिए **"स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिम्"** कहा गया है और चौथे स्रोत **"चतुर्थं नदीसरसितटाक कूपोद्घाटनम्"** की टीका में त. गणपति शास्त्री ने कहा है : **"उद्घाट्यते निस्सार्यते जलमनेनेत् उद्घाटोऽरघट्टकादि यन्त्रलक्षणया...**।" (पृष्ठ 287)

लेकिन, यह टीका पिछली सदी की है और चाणक्य के काल के जल-यन्त्रों की पुष्टि नहीं करती। यन्त्रों के स्वरूप पर कुछ और विचार के लिए मनुस्मृति के साक्ष्य देखें, तो वहाँ 'प्रस्रवाणानि' और 'सततमुदकागम' जैसे शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। ये यन्त्र न होकर सिंचाई के काम आने वाली नहरें और नदियाँ हो सकती हैं।

यन्त्रों और यन्त्रों से जुड़े लोगों का कदाचित् पहला साक्ष्य महाराष्ट्र से मिलता है। यह नासिक बौद्ध गुहाभिलेख है और आभीर शासक माढ़री पुत्र ईश्वरसेन के समय का है। यानी क्षत्रपकालीन वर्ष 9 का जिसके अक्षर सातवाहनों के परवर्ती लगते हैं। ल्यूडर्स की अभिलेखीय सूची में आए इस साक्ष्य में "ओद् यन्त्रक" का उल्लेख है और उसकी पहचान जलीय इंजन बनानेवाले मजदूर या कारीगर से की जाती है। हालाँकि इन लोगों की श्रेणी की पहचान पर एक राय नहीं है। इसकी नवीं दसवीं पंक्ति में लिखा है : **"हस्ते कार्षापणसहस्रं 1000 ओद्यन्त्रिकसहस्राणि द्वे 2..."**

अब कैसे तय हो कि ये जल के इंजन कैसे होते थे? हम यह भी तो नहीं जानते हैं कि ये इंजन जल भरने के काम आते थे या पानी चढ़ाने, तोड़ने या फिर पानी में तैरने? लेकिन यह जरूर है कि पानी के लिए ये इंजन थे और 'ओद् यन्त्रक' सक्रिय थे; तथापि इसके समकालीन 'देवीपुराण' में द्वारीबन्ध के जिस निर्माण, स्वरूप, रचना, उपयोग आदि की जानकारियाँ हैं, उसमें ऐसा कोई विवरण नहीं है, उसने जरूरी भी नहीं समझा हो।

जल संरक्षण की वस्तु है। जल से ही कल है। यह प्रकृति का अनुपम उपहार है और भविष्य भूषण भी है। मैंने सस्य-वेद, काश्यपीय कृषि-पद्धति, कृषि-पुराण, डंक-भडली-संवाद, वृक्षायुर्वेद, विश्ववल्लभ, कृषि-कामधेनु, बार्हस्पत्य कृषिशास्त्र ही नहीं, अपराजित-पृच्छा, राजवल्लभ-वास्तुशास्त्र, शिल्प-रत्नम्, मानसोल्लास आदि में जल के जितने पक्षों पर विचार किया है, वह भारतीय जलशास्त्र के आनुषांगिक विषय हैं। इसी पर जल और भारतीय संस्कृति कृति का प्रणयन किया गया।

वराहमिहिर का भूमिगत जल परीक्षण

यह विषय देश के लगभग हर क्षेत्र में लिखा गया है। गुजरात और महाराष्ट्र में निकली दो अनूदित पुस्तकों की भूमिका में मैंने माना कि यह ऐसा ज्ञान है जो सर्वसामान्य को होना चाहिए।

वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में एक उदकार्गल नामक अध्याय में 125 श्लोकों में भूगर्भस्थ जल की विभिन्न स्थितियाँ और उनके ज्ञान सम्बन्धी संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया है। विभिन्न वृक्षों-वनस्पतियों, मिट्टी के रंग, पत्थर, क्षेत्र, देश आदि के अनुसार भूगर्भस्थ जल की उपलब्धि का इसमें पूर्वानुमान दिया गया है। बताया गया कि किस स्थिति में कितनी गहराई पर जल हो सकता है। फिर अपेय जल को शुद्ध कर कैसे पेय बनाया जाय, यह संकेत दिया गया है। इस विवरण के ज्ञान से भूगर्भस्थ जल को पाने का प्रयास किया जा सकता है। वराहमिहिर ने अपने समय में प्रचलित लोकविश्वासों और अनुभवों की परख का सार लिखकर भावी जनता के लिए मार्गदर्शन किया है, लेकिन वह अपने से पूर्व इस शास्त्र की परम्परा भी लिखकर आभार मानता है। वह मानता है कि भूगर्भस्थ जल का लोग परीक्षण कर सकें और तदनुसार कुएँ खोदकर जल प्राप्त करने का प्रयास कर सकें। उससे प्राणियों तथा फसलों के लिए पानी उपलब्ध करा सकें। ऐसे ही विभिन्न आधारों पर लोकानुभव के सार की समझ का ही परिणाम है कि प्राचीन काल के जो कुएँ बावड़ी आज उपलब्ध हैं, उनमें अटूट जल पाया जाता है।

परन्तु, आज हम उनकी उपयोगिता की उपेक्षा करके पानी-पानी के लिए मोहताज होते जा रहे हैं। उधर पर्याप्त वर्षा के अभाव ने नयें पुराने कई वापी-कूपों को जीवनहीन कर दिया है। इधर उनके अखण्ड स्रोत के रूप में जो-जो नदी-तालाब थे, उनका दोहन हो जाने से भी वे सूखते गये। अधिक गहाराई में जो जलस्रोत हैं उनका भी आज नलकूपों द्वारा दोहन हो जाने से भूगर्भस्थ जल का अभाव होता जा रहा है। इस प्रकार जलस्तर गिरता गया और गिरते जलस्तर के कारण पारम्परिक वृक्ष भी सूखते गये। यही नहीं, कृषि-उपयोग या बढ़ती बस्तियों के लिए तथा लकड़ी के व्यवसाय ने वृक्षों की बेरहमी से कटाई इस तेजी से की कि वे पारम्परिक वृक्ष लुप्त हो गये। परिणामतः जिन वनस्पतियों के आधार परम्परा जल-स्थान बताती रही, वे वनस्पतियाँ ही नहीं बचीं तो वहाँ जल का अवबोध कैसे हो सकता है। तब भी, अभी वनस्पतियाँ जहाँ बची हैं एवं मिट्टी, पत्थर आदि की पहचान से जलस्थिति का ज्ञान हो सकता है। यदि पुनः अच्छी वर्षा प्रतिवर्ष होती रहे, वन और वनस्पतियों की वृद्धि होती रहे, तो वराहमिहिर के बताये लक्षणों के आधार पर भूगर्भस्थ जल स्थान और उसकी गहराई को जाना जा सकता है। वैसे भी ये लक्षण ऐसे हैं जो न केवल भारत अपितु विश्वभर में कहीं भी उपयोगी हो सकते हैं और इन लक्षणों के आधार पर विश्व में कहीं भी भूगर्भस्थ जल की प्राप्ति के प्रयास किया जा सकते हैं।

वैसे तो लोक जीवन आज भी भूगर्भस्थ जल के कई लक्षणों को जानता है। गाँवों में आज भी सब जानते हैं कि जहाँ गूलर या उडुंबर का पेड़ है, वहाँ मीठा पानी मिलेगा। वे यह भी जानते हैं कि कुआँ खोदते समय काली चट्टान जब तक रहेगी, पानी नहीं मिलेगा परन्तु जैसे ही हरा पत्थर दिखाई देगा, उसमें पानी का स्रोत मिल जाएगा। लोक अनुभव सिद्ध ज्ञान की बहुधा रक्षा करता है। और रक्षित ज्ञान की वह अन्तःसलिला आज भी पूरे भारत के ग्राम जनजीवन में बहती जा रही है। तब भी पुरातन काल में प्रचलित कुछ नये नुस्खे आज भी उपयोग हो सकते हैं। सारस्वत और मनु के मतानुसार वराहमिहिर जहाँ भूगर्भस्थ जल की प्राप्ति की सम्भावनाओं की तलाश कर रहे हैं, वहीं राजा भोज विभिन्न प्रकार के जलों की मानव-स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगिता को रेखांकित कर रहे हैं। इस प्रकार, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में जल-विमर्श पर पर्याप्त अध्ययन हैं।

***